श्रीमते रामानन्दाय नमः ।

द्वारपीठसंस्थापक श्री१००८श्रीमदनुभवानन्दाचार्यप्रणीता

श्रीगीतार्थसुधा

सुधाबिन्दुव्याख्यासहिता ।

टीकाकारस्तथा प्रकाशकः

पण्डितराज महान्तश्री कपिलदेवाचार्यः
व्याकरणतीर्थः

श्रीरामजीमन्दिर–पालनपुर (गुजरात)

प्रति १०००] श्रीरामानन्दाब्द ६५५ [सन् १९५४ ई.

मूल्य ०–३–०

मुद्रकः पुरुषोत्तमदास शंकरदास पटेल
श्री उत्कृष्ट मुद्रणालय
गांधीरोड : अहमदाबाद

* भूमिका *

अनन्तकल्याणगुणनिलय श्रीजानकीनाथजीकी असीम अनुकम्पासे समस्त श्रीरामानन्दीय श्रीवैष्णवबन्धुओंसे यह निवेदन करते अत्यन्त हर्ष हो रहा है कि यह गीतार्थसुधा नामका निबन्ध जो आज आप महानुभावोंके हाथमें उपस्थित कर रहा हूं। यह ग्रन्थरत्न मैं जब जगद्विजयी महामहोपाध्याय स्वामीश्री १०८ श्रीरघुवराचार्यजी महाराजसे गीताका श्रीमदानन्दभाष्य पढ़ रहा था। उसी समय श्रीमदनुभवानन्दाचार्यप्रणीत यह गीतार्थसुधा नामक संक्षिप्त गीतार्थसार देखकर महती प्रसन्नता हुई। मनमें सदा विचार होने लगा कि इसकी विस्तृत् टीका अवश्य करुंगा। किन्तु अनेक कारणकलापसे आजतक इसकी पूर्ति नहीं हुई। यद्यपि संस्कृतमर्मज्ञ सुलभता से इसको समझ सकते हैं। तो भी सुधार्थबिन्दु नाम की टीका हिन्दी जाननेवालोंके लिये किया हूं। जिससे श्रीअनुभवानन्दाचार्यद्वारे के श्री वैष्णव इस अमूल्य रत्नको अपनावें। अनन्तश्री सुरसुरानन्दाचार्यजीकी जयन्ती वैशाख शु० ३ को तथा उसी परंपरामें आये हुये श्रीमदनुभवानन्दाचार्यजीकी जयन्ती वसन्तपंचमी माघ शुक्ल ५ को अवश्य मनावें।

महान्तश्रीकपिलदेवाचार्य
श्रीरामानन्द औषधालय—**पालनपुर**

श्रीजानकीशो विजयतेतराम्।

आनन्दभाष्यकारश्रीरामानन्दाचार्याय नमः।

श्रीमदनुभवानन्दद्वारपीठसंस्थापकाचार्यजगद्गुरुश्रीमदनु-
भवानन्दाचार्यप्रणीता

* श्रीगीतार्थसुधा *

उत्पत्यादि विधायकं च जगतो हेतुं परं चेश्वरं
जीवाजीवशरीरिणं भक्त्यैव सायुज्यदम् ॥
निर्दोषं सुगुणाकरं निखिलविद्वेदान्तगम्यं विभुं
गीतोक्तं वरदं नतोऽस्मि करुणाम्भोधिं प्रभुं राघवम् ॥१॥

भजेऽहं जगदाधारं जानकीशं दयानिधिम्।
आनन्दभाष्यकर्तारं रामानन्दं जगद्गुरुम् ॥१॥
रामानन्दयतीन्द्रस्य शिष्यवर्यं मुनीश्वरम्
वन्दे सुरसुरानन्दं द्वाराचार्यं जगद्गुरुम्।
श्रीमदनुभवानन्दं नत्वा वेदान्तवेदिनम्
व्याख्यां कुर्वे सुबोधाय श्रीसुधाबिन्दुनामिकाम् ॥

जगत्की सृष्टि स्थिति और लय करनेवाले अभिन्ननिमित्तो-
पादान कारण परात्पर ब्रह्म समस्त चेतनाचेतनके शरीरी अतिसुन्दर
शरण (रक्षक) केवल भक्तिसे ही मुक्ति देनेवाले दोषरहित कल्याण-
गुणोंके समुद्र सर्वज्ञ वेदान्तवेद्य गीताशास्त्रप्रतिपादित वरदान देने-
वाले करुणासिन्धु प्रभु श्रीरामजीको मैं नमस्कार करता हूं ॥१॥

नत्वा गुरुं तथाऽऽनन्दभाष्यकारं जगद्गुरुम् ।
करोम्यनुभवानन्दः सुधां मृत्युविनाशिनीम् ॥२॥

परमपूज्य श्रीसम्प्रदायाचार्य आनन्दभाष्यकार अनन्तश्रीजगद्गुरु श्रीरामानन्दाचार्य यतिसार्वभौम तथा श्रीगुरुदेवको नमस्कार करके मैं अनुभवानन्द मृत्युका विनाश करनेवाली सुधा (गीतार्थ सुधा) को बनाता हूं ॥ २ ॥

कर्मज्ञानप्रसाध्या भगवति परमा भक्तिरेकोभ्युपायः
श्रेष्ठो मोक्षस्य वाच्यो मतमितिविदितं ज्ञापयिष्यन्मुकुन्दः।
धर्माधर्मप्रसंगाद् विकलितमनसं पार्थमुद्दिश्य गीता-
माहोपोद्घातरूपः सुदृढमभिहितस्तत्र चाद्यः प्रपाठः ॥३॥

कर्म और ज्ञानसे साध्य भगवान् श्रीरामजीकी उत्कृष्ट भक्ति मात्र ही मोक्षका श्रेष्ठ उपाय है । इस प्रसिद्ध मतको बतलाते हुए भगवान् श्रीकृष्णजीने धर्म और अधर्मके प्रसंगसे विकलित चित्त-वाले अर्जुनको लक्ष्यकरके गीताका कथन किया है । उसमें अच्छी प्रकारसे कहा हुआ उपोद्घातरूप प्रथम अध्याय है ॥ ३ ॥

प्रोक्तौ देहात्मबुद्ध्या स्वजनममतया बालिशे मोहशोकौ
क्षीयेते तौ च बोधात् फलमतिरहितात् कर्मणः सोऽपि सिध्येत्।
तस्माद् भक्तिः परेशे नियमितमनसा प्राप्यते सत्त्ववृद्ध्या
तस्याः शान्तिर्ध्रुवात्मा फलमिदमशिषत् कृष्णचन्द्रो द्वितीये ॥४॥

शरीरको ही आत्मा माननेवाली बुद्धि और स्वजनोंकी ममतासे मूर्ख में मोह और शोक कहे गये हैं । उन दोनोंका नाश ज्ञानसे

होता है। मोह और शोक को नाश करनेवाला ज्ञान भी फलेच्छा-रहित कर्म करनेसे होता है। उससे सत्त्ववृद्धि होनेसे नियमित मनसे परमेश्वरकी भक्ति प्राप्त होती है। उस भक्तिका फल ध्रुव शान्ति (मोक्ष) है ॥ ४ ॥

ज्ञानं कर्मेति निष्ठाद्वयमिह जगति प्राहुराम्नायविज्ञाः
कर्मारम्भं विहाय क्षणमपि भजते नैव कश्चित् प्रशान्तिम् ।
तस्मात् कर्मानुवृत्तिर्भगवति मनसा न्यस्य कर्माणि सम्यक्
कर्तव्या पुण्यपुंसा गलितफलतृषा प्रोक्तमेतत् तृतीये ॥५॥

जगत्में वेदवेत्ता लोग ज्ञाननिष्ठा और कर्मनिष्ठा दो निष्ठा-ओंको कहते हैं। कोई कुछ किये बिना एकक्षण भी शान्तिको नहीं पाता है। पुण्यशाली पुरुषको फलेच्छारहित होकर समस्त कर्म भगवत्समर्पित करके कर्मावृत्ति करना चाहिये। यह बात तीसरे अध्यायमें कही गई है ॥ ५ ॥

प्रोक्ता कर्मप्रसंगान्निजविभवकथा नित्यकर्माणि पश्चात्
कर्माकर्मस्वरूपं मतिसृतिमशिषत् कर्मभिः सम्प्रवृत्ताम् ।
यज्ञानां द्वादशानामनुकथनमितो ज्ञानयज्ञस्य मौख्यम्
ज्ञानाग्निर्नाशयत्येववृजिननिचयं तूर्यं इत्यभ्यधत्त ॥६॥

चौथे अध्यायमें भगवान्ने कर्मप्रसंगसे अपने वैभवकी कथा कही है। पीछे नित्यकर्मोंका वर्णन किया है। पीछे कर्म और अकर्मके स्वरूप कहे हैं। तत्पश्चात् कर्मोंसे प्रवृत्त हुई ज्ञानपद्धति (ज्ञानमार्ग)को कहा है। पीछे द्वादश यज्ञोंको कहा फिर ज्ञानका

ही प्राधान्य कहा गया है । पश्चात् कहा कि ज्ञानरूपी अग्नि पाप-समूहको नाश करती है ॥ ६ ॥

ज्ञानाकारं विधत्ते श्रुतिविदितफलं कर्म सम्पच्यमानं
सन्यासस्तस्य नेष्टः सममतिरुदिता ह्यात्मलब्धेरुपायः ।
भोगानां दुःखदत्वाद्विरतिरतितरां पण्डितैस्तेभ्य इष्टा
स्वर्थानेतानवादीत् प्रणतसुरतरुः पञ्चमे वासुदेवः ॥७॥

वेदोंमें जिसका फल विदित है वह सम्यक्पक्व कर्म ज्ञानाकारको धारण करता है । उस कर्मका त्याग करना अच्छा नहीं है । आत्मप्राप्तिका उपाय साम्यबुद्धि कही गई है । पण्डितोंको (सद्विचारशील बुद्धिशालियोंको) भोगोंसे अत्यन्त वैराग्य करना चाहिये । क्योंकि विषयभोग ही दुःख देनेवाले हैं । प्रणतकल्पतरु भगवान् श्रीवासुदेवने इन सुन्दर अर्थोंको पांचवे अध्यायमें कहा है ॥ ८ ॥

योगाभ्यासस्य रीतिर्विरतिरतिशया संसृतेर्मोहजाला
चातुर्विध्यं प्रतीतं सममतिरधिको योगिनां तत्र चोक्तः ।
योगस्योत्कृष्टसिद्धिः परगतिफलिका श्रद्धया यः स युक्तो
योगिष्वेतेषु चेडयं भजति हरिमितिप्राह षष्ठे पदार्थान् ॥८॥

भगवान्‌ने योगाभ्यास की रीति मोहजालरूप संसारसे अत्यन्त वैराग्य, योगियोंके चार भेद, उन चतुर्विध योगियोंमें समबुद्धिवाले योगीकी श्रेष्ठताका कथन और योगकी उत्कृष्ट सिद्धि मोक्ष देनेवाली है । इन योगियोंमें जो श्रद्धासे भगवान्‌का भजन करता है वह युक्त है इत्यादि पदार्थोंको छठे अध्यायमें कहा है ॥ ८ ॥

याथार्थ्यं स्वस्य चोक्तं जगति जनचयो मायया मोहमाप्त-
स्तामेतां तर्तुकामैः खररिपुचरणे सुप्रपत्तिर्विधेया।
सेवा देवान्तराणां परिमितफलदा नैव कार्या प्रपन्नै-
र्ज्ञानी श्रेष्ठः समेषामितिमतमवदत् सप्तमे श्रीमुकुन्दः ॥९॥

भगवान् श्रीकृष्णजीने सातवें अध्यायमें अपने यथार्थ स्वरूपको कहा है। तथा जगत्में जनसमूह मायाद्वारा मोहको प्राप्त हुआ है, इस मायाको तरनेकी इच्छावालोंको खरारि भगवान् श्रीरामजीके चरणोंमें सुन्दर प्रपत्ति (शरणागति) करनी चाहिये, भगवत्प्रपन्नोंको परिमित (स्वल्प) फल देनेवाली अन्य देवोंकी सेवा नहीं करनी चाहिये और सर्वमें श्रेष्ठ ज्ञानी होता हैं इत्यादि मतको कहा है ॥९॥

प्रश्नाः पार्थस्य सप्त प्रतिवचनमथो वर्णनं चान्तिमस्य
ब्रह्माऽनुध्यानतोऽद्धा ह्यसुगतिसमये ब्रह्मभावं सदेति।
क्षेत्रज्ञस्याप्युपास्तौ प्रकृतिविरहिणः सद्गतिः सैव शुक्ला
हेतुर्नैवागतेः सा सृतिरितिभगवानष्टमे स्पष्टमाख्यत् ॥१०॥

अर्जुनके सात प्रश्न और उनका उत्तर, अन्तिमका वर्णन, प्राणप्रयाणके समयमें ब्रह्मका ध्यान करनेसे सदा ब्रह्मभावको प्राप्त होता है, उपासना होनेपर प्रकृतिवियुक्त क्षेत्रज्ञ (जीव)की सद्गति होती है वही शुक्लागति कही जाती है। वह गति आगमनमें (पुनः मृत्युलोकमें आनेमें) कारण नहीं होती है। यह भगवान्ने आठवें अध्यायमें कहा है ॥ १० ॥

माहात्म्यं स्वस्य दिव्यं जगति भगवतो व्याप्तिरन्तः समस्मिन्
भक्त्याराध्यः परेशः सुमहितमनसां लक्षणं कार्यमेषाम् ।
आवृत्तिश्चात्र भूयो विलयमुपगते कर्मिणां स्वर्गलोके
श्रीशोपास्तेः स्वरूपं ततमिति नवमे प्रादिशद् देवदेवः ॥११॥

देवोंके भी देव भगवान् श्रीकृष्णजीने नवमें अध्यायमें अपने दिव्य माहात्म्यको, समस्त जगत्के अन्तरमें भगवान्की व्याप्तिको, प्रशस्त मनवाले महानुभावोंको परमेश्वर (भगवान् श्रीरामजी) आराधन करनेलायक हैं' इस बातको, इन भगवद्भक्तोंके लक्षण और आचरणको, कर्मवाले पुरुषोंके स्वर्गलोकके नष्ट होनेपर पुनरावृत्तिको और भगवदुपासनाके स्वरूपको कहा है ॥ ११ ॥

व्याप्तं विश्वं समस्तं किल चरमचरं येन सर्वाधिपेना-
त्रासीमैश्वर्यशाली विमलगुणनिधिर्यः स्वतन्त्रः परात्मा ।
यत्स्वायत्तस्वरूपस्थितिगतिरुदिता यद्विभूतिस्त्वनन्ता
सर्वात्मा सोऽयमेकः प्रभुरितिदशमे निश्चिकायादिदेवः ॥१२॥

'जिस सर्वेश्वरसे समस्त चराचर जगत् व्याप्त हैं, जो असीम ऐश्वर्यवाला निर्मलगुणोंका भण्डार स्वतन्त्र और परमात्मा है, जिसके अधीन स्वरूप स्थिति और गति कही गई हैं और जिसकी विभूति अनन्त है वह सर्वात्मा प्रभु एक है' आदिदेव भगवान् श्रीकृष्णजीने यह दशमे अध्यायमें निश्चित किया है ॥ १२ ॥

पार्थश्चेशं दिदृक्षुर्हि वपुरतिततं चर्मचक्षुर्न योग्यं
तस्मै दत्वा तु दिव्यं स्मयभयजनकं दर्शयामास कृष्णः ।

मेघान् विद्युन्महीध्रान् क्षितिजलधियुतान् सूर्यचन्द्रादिदेवान्
दृष्ट्वा देवस्य देहे शरणमुपगतोऽवोचदेकादशेऽर्थान् ॥१३॥

अर्जुनने भगवान्के अत्यन्त विस्तृत शरीरको देखना चाहा। परन्तु चर्मचक्षु उसके योग्य नहीं है। इसलिये भगवान् श्रीकृष्ण-जीने अर्जुनको दिव्य नेत्र देकर विस्मय और भयजनक अपना व्यापक शरीर दिखलाया। भगवान्के शरीरमें मेघों पृथिवी और समुद्रोंसे युक्त विद्युत् और सूर्य चन्द्र आदि देवोंको देखकर अर्जुन भगवान्की शरणमें गया। इत्यादि अर्थोंको भगवान्ने ग्यारहवें अध्यायमें कहा है ॥ १३ ॥

श्रेष्ठोपायस्तु मुक्तेर्भगवति सुदृढा प्रीतिरेकैव शुद्धा
तत्राशक्तस्य कर्मण्यभिरुचिरुचिता ह्यात्मनिष्ठस्य पुंसः।
आत्मोपास्तेः प्रकारा अतिरतिमदिशत् स्वस्य भक्ते परेशः
स्वार्थानेतानवादीच्छ्रितजनरतिकृद् द्वादशे च प्रपाठे ॥१४॥

मुक्तिका श्रेष्ठोपाय तो केवल भगवान्में सुदृढ़ और शुद्ध प्रेम है। ससमें अशक्त आत्मनिष्ठ पुरुषकी कर्ममें रुचि होना उचित ही है। आत्मोपासना के प्रकार तथा अपने भक्तमें अपने अत्यन्त प्रेम इत्यादि सुन्दर अर्थोंको स्वाश्रितजनोंके प्रेमको करनेवाले भगवान्ने बारहवें अध्यायमें कहा है ॥ १४ ॥

क्षेत्रक्षेत्रज्ञरूपं प्रकृतिपुरुषयोर्भेद आत्मस्वरूप-
ज्ञानोपायास्तथाऽत्र त्रिगुणपुरुषयोर्योगतो विश्वसृष्टिः।

कर्तृत्वे हेतुरेका प्रकृतिरथ पुमान् भोक्तृभावे च हेतु-
र्बन्धोच्छेदो विवेकात् त्रिसहितदशमे शौरिणोक्ता इमेऽर्थाः ॥१५॥

क्षेत्र (देह) और क्षेत्रज्ञ (जीव)का स्वरूप, प्रकृति और पुरुषका भेद, आत्माका स्वरूप, ज्ञानके उपाय, प्रकृति और पुरुषके योगसे विश्वकी सृष्टि, कर्त्तृत्वमें हेतु केवल प्रकृति, भोक्तृत्वमें हेतु पुरुष और विवेकसे बन्धनाश इन पदार्थोंको भगवान्ने त्रयोदश अध्यायमें कहा है ॥ १५ ॥

सूते विश्वं समस्तं प्रकृतिरनुपमा ब्रह्मस्वायत्तमूर्तिः
सत्वादीनां त्रयाणां प्रकृतिगुणतया देहिनो बन्धकत्वम् ।
लिङ्गं कार्यञ्च तेषां खलु मतिकृतिभिर्दर्शितं तत्कृतोऽयं
बन्धो भक्त्या प्रहेयो द्विगुणित उदिताः सप्तकेऽर्था मुदैते ॥१६॥

ब्रह्माधीनमूर्त्तिवाली अनुपम प्रकृति समस्त विश्वको उत्पन्न करती है। प्रकृतिके गुण होनेके कारणसे सत्त्वादि तीनों गुण प्राणीके बन्धन करनेवाले हैं। उन्होंके चिन्ह और कार्यको मति और कार्योंके द्वारा दिखा दिया है। उन्हीं तीनों गुणोंसे ही बन्ध होता है। और वह बन्ध भक्तिसे छुड़ानेलायक है। ये सब अर्थ चौदहवें अध्यायमें कहे गये हैं ॥ १६ ॥

संसारोऽश्वत्थवृक्षः श्रुतिविदितपदोऽव्यक्तमूलश्च तं वै
छित्वाऽसङ्गाख्यहेत्या प्रपदनमनिशं राघवेशे विधेयम् ।
बद्धान्मुक्तात् परश्चोत्तमपुरुष इति ख्यात ईशः स्वतन्त्रो
भर्त्ता चास्म्येक एवावददिति दशमे पञ्चयुक्तेऽर्थजातम् ॥१७॥

अव्यक्तमूल और वेदविदित संसाररूपी अश्वत्थ (पीपल) का वृक्ष है। असङ्ग (अनासक्ति)रूपी शस्त्रसे उस अश्वत्थ (संसार) को काटकर निरन्तर श्रीरामजीकी प्रपत्ति (शरणागति) करनी चाहिये। बद्ध और मुक्त जीवोंसे पर उत्तमपुरुषनामसे प्रसिद्ध सर्वका भरण-पोषण करनेवाला स्वतन्त्र ईश्वर एक मैं ही हूं। इत्यादि अर्थसमूह को पन्द्रहवें अध्यायमें कहा है ॥ १७॥

दैवी सम्पज्जनानां भवति सुकृतिनां मुक्तये कर्मबन्धा-
न्नित्यं बन्धाय लोके कुटिलमतिजुषामासुरी सा दुरन्ता।
कार्याकार्यव्यवस्थां दिशति हिततमं शास्त्रमेतस्य त्याग-
श्चासुर्या मूलमुक्तं निरयफलमिमे षोडशे वर्णितार्थाः ॥१८॥

लोकमें दैवी सम्पत् सत्कर्मशाली पुरुषोंकी कर्मबन्धनसे मुक्ति (छूटजाने)के लिये होती है। और आसुरीसम्पत् कुटिल बुद्धि-शालियोंके बन्धनके लिये होती है। आसुरीसम्पत् दुरन्त (दुःखसे जिसका अन्त हो ऐसी) होती है। हिततम (अत्यन्त हितरूप) शास्त्र कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य कर्मोंकी व्यवस्थाको बताता है। उस शास्त्रका त्याग आसुरी सम्पत्का मूल और नरकफलको देनेवाला होता है। ये सब अर्थ सोलहवें अध्यायमें वर्णित हैं ॥ १८ ॥

वैधं शास्त्रीयकर्म त्रिगुणपरवशं यज्ञदाने तपश्च
त्रैविध्यं तस्य वेद्यं सुकृतियुतनरैः सात्त्विकैः सात्त्विकं वै
ग्राह्यं नैवासुरं तत् खलु फलरहितं लक्षणं तस्य सम्यक्
श्रीमत्कृष्णेन चोक्तं वरमिह दशमे सप्तयुक्ते प्रपाठे ॥१९॥

विधान किया हुआ यज्ञ और तपरूप शास्त्रीय कर्म त्रिगुणाधीन है। पुण्यशालियोंको उसके तीन भेद जानना चाहिये। सात्त्विक पुरुषोंको सात्त्विक कर्म ही ग्रहण करना चाहिये। असुर कर्म नहीं करना चाहिये। वह निष्फल होता है। उसका सम्यक् लक्षण श्रीकृष्ण भगवान्ने इस सत्रहवें अध्यायमें कहा है ॥ १९॥

सन्यासः त्यागरूपो जगति मनुजैः सत्वमालम्बनीयं
सीतानाथः परेशोऽमलगुणजलधिर्दिव्य देहोऽवतारी।
सर्वज्ञः सर्वशक्तिः कृतिचयफलदः कर्मणां संविधाता
सायुज्यं तत्प्रपत्त्या भवति तनुभृतां प्रोक्तमन्त्येऽत्रचैतत् ॥२०॥

सन्यास त्यागरूप ही है। जगत्में मनुष्यको सत्त्वका ही अवलम्बन लेना चाहिये। परमेश्वर निर्मल गुणोंके समुद्र दिव्य देहवाले सम्पूर्ण अवतारोंके अवतारी सर्वज्ञ सर्वशक्तिमान् भगवान् श्रीसीतानाथजी समस्तकर्मोंके करनेवाले तथा समस्तकर्मोंके फल देनेवाले हैं। देहधारियोंको उनकी प्रपत्ति (शरणागति)से सायुज्यमुक्ति मिलती है। यह इस अन्तिम अर्थात् अठारहवें अध्यायमें कहा गया है ॥ २० ॥

श्रीगीतार्थसुधा चैषाऽनुभवानन्दनिर्मिता।
जन्ममृत्युविनाशाय भूयान्मननशालिनाम् ॥२२॥

श्रीमदनुभवानन्दद्वारपीठसंस्थापक अनन्तश्री जगद्गुरुश्रीअनुभवा-

नन्दाचार्यजी महाराजद्वारानिर्मित यह 'श्रीगीतार्थसुधा' मनन करने-वाले पुरुषोंके जन्म और मृत्युके विनाशके लिये हो ॥ २१ ॥

इति पण्डितराज श्रीकपिलदेवाचार्यवेदान्तव्याकरणतीर्थ-
निर्मितसुधाबिन्दुनामिका टीका समाप्ता ।